R-6

नया प्रस्थान

2

संपादक
सतीश कुमार राय

कार्यकारी संपादक
राकेश रंजन

विश्वविद्यालय हिंदी विभाग
बाबासाहेब भीमराव अंबेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

नया प्रस्थान

वर्ष-2, अंक-2; जनवरी-दिसंबर, 2021

संपादक
सतीश कुमार राय

कार्यकारी संपादक
राकेश रंजन

सह-संपादक
सुशांत कुमार, संध्या पांडेय
पुष्पेंद्र कुमार

संपादक-मंडल
त्रिविक्रम नारायण सिंह, वीरेंद्रनाथ मिश्र, कल्याण कुमार झा

परामर्श-मंडल
रवींद्र उपाध्याय, पूनम सिंह

प्रबंध-संपादक
उज्ज्वल आलोक

संपादकीय संपर्क :
विश्वविद्यालय हिंदी विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय,
मुजफ्फरपुर (बिहार), पिन : 842001
मो. 9934203870, 7903285026
ई-मेल : nayaprasthan@gmail.com

मुद्रण : बी.के. ऑफसेट, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
आवरण : विभांशु राज
मूल्य : 100 रुपए

अनुक्रम

संपादकीय : सतीश कुमार राय/5

स्मृति-शेष : खगेंद्र ठाकुर, मंगलेश डबराल
गतिशील यथार्थ के लिए कोई भी मानदंड शाश्वत नहीं होता
(खगेंद्र ठाकुर से महावीर अग्रवाल की बातचीत)/11
दस कविताएँ : खगेंद्र ठाकुर/20
मंगलेश डबराल : कविता में मानवीयता को बचाने की बेचैनी : धीरेंद्र कुमार/29
दस कविताएँ : मंगलेश डबराल/40

व्याख्यान
समालोचक की भूमिका : नामवर सिंह/49

लेख
मदन कश्यप का कवि-कर्म : रेवती रमण/58
आलोचना : पहचान का संकट : तरुण कुमार/79
लोक के आलोक में त्रिलोचन : शैलेंद्र कुमार शुक्ल/86

विरासत
ठाकुर : 'कवि उनहीं के जे सनेही साँचे उर के' : नंदकिशोर नवल/94
चित्र रत्नावली के : सत्यप्रकाश त्रिपाठी/103
'पउमचरिउ' की रामकथा : अरुण कुमार निराला/109

विशिष्ट कवि : मृत्युंजय
समकालीन काव्य-परिदृश्य में मृत्युंजय की कविताएँ : राकेश रंजन/116
चुनी हुई कविताएँ : मृत्युंजय/120

कविताएँ
पाँच कविताएँ : अनामिका/127
दो कविताएँ : विनय कुमार/137
पाँच कविताएँ : भागवतशरण झा 'अनिमेष'/142
दो कविताएँ : प्रेम रंजन अनिमेष/150
पाँच कविताएँ : श्रुति कुशवाहा/165
पाँच कविताएँ : अनामिका अनु/170
दो कविताएँ : नताशा/176

तीन कविताएँ : रश्मि भारद्वाज/181
चार कविताएँ : संध्या पांडेय/187
पाँच कविताएँ : अरमान आनंद/191

कहानियाँ
टूटे तिलिस्म की किरचें : अवधेश प्रीत/195
बाबूजी का बक्सा : गीताश्री/211
जौम्बी : शिवेंद्र/230

विशिष्ट ग़ज़लगो : सुरेश गुप्त
हिंदी ग़ज़लों की विरासत को अग्रेषित करनेवाला ग़ज़लगो : सतीश कुमार राय/235
दस ग़ज़लें : सुरेश गुप्त/238

गीत, ग़ज़लें
चार ग़ज़लें : रवींद्र उपाध्याय/245
पाँच ग़ज़लें : प्रेमकिरण/248
पाँच ग़ज़लें : वशिष्ठ अनूप/252
तीन ग़ज़लें, दो गीत : संजय सिंह 'मस्त'/256
चार ग़ज़लें : गोरख प्रसाद मस्ताना/262
पाँच ग़ज़लें : शिवनारायण/265

व्यंग्य कथाएँ, लघुकथाएँ
कसम बासमती की : कल्याण कुमार झा/268
एक मजिस्ट्रेट की डायरी : मुनींद्र कुमार मिश्र/272
लघुकथाएँ : राकेश रंजन/277

समीक्षाएँ
हट्ट रे! हथौड़े, छेनियों की तराश तो कतई नहीं यह! : मनीषा कुलश्रेष्ठ/283
इतिहास और कल्पना का कोरस राजनटनी : सुरेश कुमार/292
आईनासाज़ : सुलगते देश, काल व समाज का मलहम : सोनल/296

प्रासंगिक
पाँच टिप्पणियाँ : कबीर संजय/302

इस अंक के रचनाकार/310

विशिष्ट कवि

समकालीन काव्य-परिदृश्य में मृत्युंजय की कविताएँ

मृत्युंजय मेरी पीढ़ी के ऐसे कवि हैं, जिनसे मुझे इश्क भी है और रश्क भी। 4 जुलाई, 1981 को उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले में जनमे मृत्युंजय 'गद्य में पद्य में समाभ्यस्त' हैं। कविता के क्षेत्र में उन्होंने अपनी सर्जनात्मक और 'नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा' के गंभीर प्रमाण दिए हैं। परंपरा और प्रयोग के ताने-बाने से बुनी उनकी कविताएँ हिंदी पाठकों के लिए सहज आकर्षक हैं। आलोचना और अनुवाद के क्षेत्रों में भी उनके काम बोलते हैं—'हैं दिए हुए मेरे प्रमाण।' उनकी उपस्थिति को मैं हिंदी कविता और पाठक के लिए शुभ मानता हूँ, इसीलिए बड़ी आश्वस्ति के साथ उनकी ओर देखता हूँ।

मृत्युंजय की कविताएँ कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर नई हैं। इन कविताओं में कथ्य शिल्प को अपूर्व रूपाकार देते हैं और शिल्प कथ्य को नवीन अर्थ-प्रसारों तक ले जाते हैं। सही अर्थों में वे एक नए कवि हैं। यह बात मैं किसी युवा कवि के परिचय की उदार औपचारिकता के निर्वाह के लिए नहीं कह रहा, बल्कि इस वास्तविक आधार पर कह रहा हूँ कि कला और साहित्य में 'नवीनता' शब्द कालबोधक नहीं, मूल्यबोधक होता है। ऐसा ही कवि अपनी काव्य-परंपरा में नवोन्मेष उत्पन्न कर उसकी विकास-प्रक्रिया में योगदान करने में सक्षम हो सकता है। पिछले कुछ दशकों में हिंदी में एकरसता और एकरूपता के जो काव्य-शिखर स्थापित हुए हैं, उनके बीच यह कवि कविता के उन दबे-छिपे स्रोतों की तलाश करता दिखलाई पड़ता है, जिनमें जीवन अपनी तमाम जटिलताओं, भाषा-भंगिमाओं, रसों, रंगों और ध्वनियों के साथ धड़कता है।

हमें समझना चाहिए कि कोई भी नई काव्यधारा 'लैगून' नहीं होती और कोई भी नया कवि 'एलियन' नहीं होता। नया कवि अपनी परंपरा के ही गर्भ से उत्पन्न होता है। टी.एस. इलियट ने अपने प्रसिद्ध लेख 'ट्रेडिशन एंड द इंडिविजुअल टैलेंट' में लिखा है कि 'नया कवि अपनी परंपरा में नया होता है।' उन्होंने यह भी लिखा है कि नए कवि में 'परंपरा की प्रतिध्वनियाँ' सुनाई पड़ती हैं। उन्होंने 'ईकोज ऑफ ट्रेडिशन' की बात कही और कहा कि जिस कवि में ये 'प्रतिध्वनियाँ' जितनी अधिक सुनाई पड़ती हैं, वह उतना ही समर्थ कवि होता है। एक सच्चा नया कवि अपनी मौलिक सृजनशीलता के बल पर परंपरा को नई धार और नई दिशा देता है।

एक ऐसे समय में, जबकि हिंदी के अधिकांश कवि छंद को कविता का पुराना फैशन मानकर त्याग चुके हैं और तुक को निरर्थक कहकर खारिज करने पर तुले हैं, मृत्युंजय की कविताओं में छंदों और तुकों के सुंदर सर्जनात्मक प्रयोग मिलते हैं। उनकी कविताओं को पढ़कर मन में यही विचार आता है कि पुरानी हॉकी स्टिक से भी नया गोल किया जा सकता है, बशर्ते खिलाड़ी दमदार हो और उसे सही गोल पोस्ट का पता हो। नामवरजी ने कभी कहा था कि, "मुक्त छंद का खुला मैदान क्या मिला, कविता एकदम सपाट हो गई।"[1] इसके करीब तीस वर्षों के बाद भी उन्होंने यही बात दुहराई कि, "मुक्त छंदों के चलन ने कविता की भाषा को बिगाड़ने में काफी काम किया है।"[2] हर गंभीर मंच पर वे प्राय: यही कहते रहे कि, "कविता को टाइप की जड़ सीमा में बाँध कर आज का कवि उसे कोटि-कोटि जनता तक पहुँचाने से इनकार करता है; इनकार वह इसलिए करता है कि वह उसके लिए लिखता ही नहीं, इसलिए उस तक पहुँचाने की आवश्यकता का भी अनुभव नहीं करता। वह पढ़े-लिखे बाबुओं के लिए लिखता है और उसी दायरे तक अपनी कविता घुमाने की हौंस रखता है। अफसोस है कि उस सिमटते हुए दायरे में दिन-पर-दिन कविता के प्रति अरुचि बढ़ती जा रही है और धीरे-धीरे कवियों व निजी गुट को छोड़कर उनका पाठक अब कोई नहीं रहा।"[3] हालाँकि नामवरजी के बार-बार ऐसा कहते रहने के बावजूद परिदृश्य में कोई बदलाव नजर नहीं आया और समस्या लगातार गंभीर से गंभीर होती गई, तो इसका एक कारण वे स्वयं भी रहे, क्योंकि अक्सर कवियों के चयन को लेकर उनकी सैद्धांतिक विवशता ने, जिसे वे उदारता कहते रहे, यथास्थिति को बनाए रखने में बड़ी भूमिका निभाई।

कविता किसी समाज की मानवीय और सांस्कृतिक चेतना के विकास में प्रमुख भूमिका निभाती है। हिंदी में निराला द्वारा प्रस्तावित मुक्तछंद की गलत समझ और फिर लंबे समय तक छंद की अवहेलना से कविता को ही नहीं, समाज को भी नुकसान हुआ। समाज कविता-विमुख हो गया। उसने अपनी सबसे बड़ी सांस्कृतिक और मानवीय धरोहर खो दी, जो उसे हर परिस्थिति में होने की समझ और जीने की ताकत देती थी, जो हर पल उसके कानों में मंत्र की बुदबुदाती रहती थी कि तुम्हारी देह पर अँधेरों के जख्म हैं, पर तुम्हारे हाथ में अब भी मशाल है... तुम्हारे पाँवों में दुस्सह यात्राओं की धूल और छाले हैं, पर तुम्हारे सिर पर अब

---

1. ज्ञानोदय; अक्टूबर, 1963

2. आजकल; स्वर्ण जयंती अंक, 1994

3. छंद में कुछ नए प्रयोग; इतिहास और आलोचना; 1956

भी इंसानियत को आगे ले जाने का भार है... तुम्हारे कंधे चोट खाकर भी झुके या टूटे नहीं हैं और तुम्हारी आँखों में अब भी दुनिया के सभी बच्चों के लिए एक बेहतर और प्यारभरे कल का सपना है... तुम्हारा रास्ता लंबा, कठिन और यातनाओं से भरा है, और अक्सर पराजयों से भी, लेकिन वही रास्ता तुम्हें एक खूबसूरत दुनिया की ओर ले जाता है...

कितना दुर्भाग्यशाली है वह समाज, जिससे उसकी आत्मा की सबसे प्रामाणिक प्रतिच्छवि—उसकी कविता—छीन ली गई है! ऐसा समाज अपना मुँह किसे दिखाएगा!

छंद से कविता में जो संगीत पैदा होता है, उससे कविता दीर्घायु होती है, उसे लोक-स्मृति का हिस्सा बनने में आसानी होती है। मेरी बातों का सरलीकृत अर्थ न लिया जाए, इसलिए मैं स्पष्ट कर दूँ कि कवि में यथार्थ की वैज्ञानिक समझ, जनधर्मिता और प्रगतिशीलता जैसे गुणों का होना अनिवार्य है। ये कवि होने की अनिवार्य शर्तें हैं। फिर यह भी कि कविता छंद और मुक्तछंद दोनों में हो सकती है। लेकिन सच्चाई है कि जिस तरह कभी छंदोबद्धता कविता की रूढ़ि हुआ करती थी, उसी तरह आज मुक्तछंद-रचना रूढ़ि हो गई है।

कविता को कथ्य और भाषा-विन्यास के नए आयामों तक ले जाने में छंद की बड़ी भूमिका होती है। कवि यदि वास्तव में कवि हुआ और उसके भीतर स्वाभाविक लय-चेतना हुई, तो अनेक बार छंद उसकी कविता को वहाँ ले जाता है, जहाँ वह खुद उसे नहीं ले जा सकता। छंद के नियम से उत्पन्न बाधाएँ उसकी अभिव्यक्ति को नए रास्तों की ओर ले जाती हैं। यह कुछ इस तरह होता है, जैसे आप पक्षी को छत से हँकाएँ तो वह पेड़ पर जाकर बैठेगा और पेड़ से हँकाएँ तो आसमान में उड़ जाएगा—यदि वह असल में पक्षी हुआ—यदि उसमें 'पंखों' की ताकत हुई। वरना पिंजरा तो है ही! इसके अलावा, कविता को जनता के चित्त तक पहुँचाने में, उसे रसबोध कराने में छंद अहम भूमिका निभाता है। जिस समाज में आम आदमी की बोली-बानी, लोकोक्तियों और मुहावरों तक में लय, छंद और तुक का प्रयोग होता हो और जहाँ रोते हुए आदमी के प्रलाप में भी लय मौजूद हो, वहाँ छंद के प्रति ऐसी बेरुखी से कविता और समाज में से किसका भला होगा?

शोषण की शानदार व्यवस्था और जबरदस्त चक्रव्यूह में रोजमर्रा की जंग हारती जनता मृत्युंजय की कविताओं की केंद्रीय वस्तु है। हमारे समय की मुख्य समस्याएँ हैं—सांप्रदायिक शक्तियों का वर्चस्व, लोकतांत्रिक मूल्यों का क्षरण और पूरी पृथ्वी को निगलने को आतुर पूँजीवादी भूख का भीषण प्रसार। कुल मिलाकर धर्मसत्ता, राज्यसत्ता और धनसत्ता के प्रेम-त्रिकोण के बीच पिसता सर्वहारा, आम आदमी। मृत्युंजय की कविताओं में दुर्भाग्य झेलते इस सर्वहारा, इस

आम आदमी की आवाजें अनेक रूपों में सुनाई पड़ती हैं—विवश, विकल, व्यथित, विषन्न, विक्षुब्ध! कहने की जरूरत नहीं कि मृत्युंजय धर्म, धन और राजनीति की उक्त तिकड़ी के तिकड़मों तथा उनके सहज अंतस्संबंधों को बखूबी समझते हैं और बड़े सर्जनात्मक और कई बार मस्तमौला ढंग से उनका राजफाश करते हैं। आश्चर्य नहीं कि उनकी कविताएँ अपने देशकाल की विडंबनाओं और विसंगतियों का आईना हैं।

बहरहाल, यहाँ प्रस्तुत उनकी कविताओं को पढ़कर आप खुद विचार करें और अपनी राय बनाएँ।

राकेश रंजन

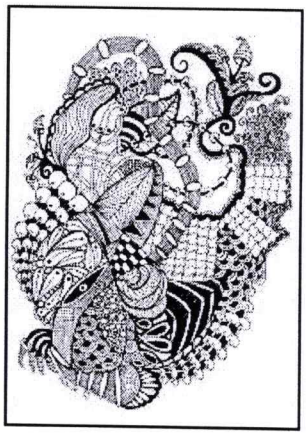

नया प्रस्थान-2/119